International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 1; Issue 5; July 2016; Page No. 50-53

भारतीय साहित्य में श्लेष का स्वरूप

इंदुबाला
V.P.O सिंधवी खेड़ा, जींद हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

श्लेष[1] शब्द श्लिष धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है चिपकना या सटना। शब्द–श्लेष में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, जिनके एकाधिक अर्थ होते हैं। इस अलंकार में ऐकशब्द के अनेक अर्थ होते हैं और वह शब्दाश्रित होता है। श्लिष्ट शब्द उसे कहते हैं, जो अनेकार्थवाचक होता है तथा जिस अलंकार में श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाय उसे श्लेष या शब्द–श्लेष कहते हैं। इसमें शब्द दो प्रकार के होते हैं–भंग एवं अभंग। जब अनेकार्थ–वाची शब्दों के कई खंड या टुकड़े किए जाएँ तो वहाँ भंगपद–श्लेष एवं शब्द के बिना खंड किए ही अनेक अर्थों का विधान किया जाय तो अभंगपद–श्लेष होगा। वस्तुतः शब्दश्लेष का चमत्कार अनेकार्थ–निबंधन में ही निहित है। अर्थ–श्लेष का सौंदर्य अर्थाश्रित होता है। इसमें एकार्थप्रति–पादक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ स्फुट होते हैं तथा शब्द–श्लेष की भाँति अनेकार्थवाचक शब्दों से अनेक अर्थ नहीं प्रकट होते, बल्कि एकार्थप्रतिपादक शब्दों के द्वारा अनेकार्थ की येाजना की जाती है। इसमें प्रथम की भाँति भंग अथवा अभंग पदों की योजना नहीं होती। शब्द–श्लेष एवं अर्थ–श्लेष के क्षेत्र सर्वथा भिन्न हैं। शब्द–श्लेष में शब्द परिवृत्तिसहत्व नहीं होता, जब कि अर्थ–श्लेष में यह तत्त्व होता है अर्थत् शब्द–श्लेष में जिन शब्दों के द्वारा अनेकार्थ की प्रतीति होती है, यदि उनके बदले उनका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय तो उसका चमत्कार नष्ट हो जायगा, पर अर्थ–श्लेष में शब्द–परिवर्तन के बाद भी भिन्नार्थ–प्रतीति की पूर्ण क्षमता विद्यमान रहती है। भामह से पंडितराज जगन्नाथ तक के विवेचन में श्लेषालंकार के संबंध में जो ऊहापोह किया गया है, उसमें मुख्यतः दो बातों पर विचार किया गया–

1. श्लेषालंकार शब्दालंकार है अथवा अर्थलंकार?
2. श्लेष स्वतंत्र अलकार है या नहीं अर्थात् श्लेष एवं अन्यालंकार–मिश्रित श्लेष की पारस्परिक स्थिति क्या है?

श्लेष शब्दालंकार है अथवा अर्थालंकार, इस प्रश्न को लेकर संस्कृत आलंकारिकों में मत–वैभिन्य है। रूद्रट, सम्मट, विश्वनाथ प्रभृति आचार्य इसे शब्दालंकार मानते हैं और अर्थालंकार भी। इनके अनुसार श्लेष के शब्दगत चमत्कार एवं अर्थगत चमत्कार–विधान में पर्याप्त अंतर होने के कारण दोनों की भिन्न स्थिति है तथा दोनों अपने में पूर्ण है। उद्भट इसे अर्थालंकार मानते हैं और रूय्यक सभंग श्लेष को शब्दालंकार स्वीकार करते हैं तथा अभंग श्लेष को अर्थालंकार। सभी आचार्यों ने स्वमत की पुष्टि के लिए पृथक्–पृथक् तर्क दिए हैं। यहाँ उनका निदर्शन किया जा रहा है सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि श्लेष अर्धालङ्कार।

आचार्य मम्मट[2] ने गुण, दोष अथवा अलंकार एंव दोष की शब्दनिष्ठता अथवा अर्थनिष्ठता का निर्णायक तत्त्व अन्वय–व्यतिरेक को माना है। जब किसी शब्द के परिवर्त्तन के पश्चात् ग्रुण, दोष अथवा अलंकार का अस्तित्व विद्यमान रहे अर्थात् उस शब्द के बदले यदि उसका पर्यायवाची या समानार्थी शब्द रख दिया जाय तब भी उसकी सत्ता अक्षुण्ण रहे तो यह निश्चय होगा कि अलंकार गुण या दोष शब्दाश्रित नहीं है अर्थात् वहाँ उसकी अर्थनिष्ठता सिद्ध होगी। इसी प्रकार यदि शब्द–परिवर्त्तन के पश्चात् किसी अलंकार, गुण या दोष का अस्तित्व नष्ट हो जाय तो वहाँ उसकी शब्दाश्रितता की सिद्धि होगी अर्थात् ऐसी स्थिति में इस अलंकार, गुण या दोष की सत्ता पूर्ववत् नहीं बनी रह सकती। इससे यह निष्कर्ष निकला कि शब्दनिष्ठ या शब्दाश्रित अलंकारों में शब्दपरिवृतिसहत्व संभव नहीं होता, जबकि अर्थनिष्ठ अलंकारों का चमत्कार शब्द–परिवर्तन के बाद भी अक्षुण्ण रहता है। इससे यह निश्चित हुआ कि अलंकारों की शब्दार्थनिष्ठता अन्वय–व्यतिरेक पर ही आश्रित है। जब शब्द–परिवर्त्तन के बाद श्लेषत्व खंडित न हो तो वह अर्थश्लेष का विषय होगा और शब्द–परिवर्तन के बाद श्लेष की स्थिति पूर्ववत् न बनी रहे तो वहाँ शब्दश्लेष होगा।

अब दूसरा प्रश्न है कि क्या अभंग श्लेष अर्थालंकार है?

रूय्यक[3] ने 'जतुकाष्ठन्याय' के आधार पर सभंगश्लेष को शब्दालंकार एवं अभंगश्लेष को अर्थालंकार मना है। इनका कहना है कि जिस प्रकार 'जतु' या लाख लकड़ी से भिन्न होकर उससे चिपकी होती है, उसी प्रकार सभंवश्लेष में भी भिन्न प्रयत्न एवं स्वर से उच्चार्यमाण दोनों शब्द एक दूसरे से चिपके रहते हैं। सर्भगश्लेष में दूसरा शब्द प्रथम से अत्यंत भिन्न प्रतीत होते हुए भी उससे चिपका रहता है। अर्थालंकार कहना चाहिए। इसमें एक गुच्छे में लगे हुए दो फलों की भाँति एक ही शब्द से दो अर्थ सटे रहते हैं। इसे रूय्यक 'एकफलवृतन्याय' कहते हैं। इनके अनुसार अलंकारों का निर्णय आश्रयाश्रयिभाव के आधार पर होना चाहिए तथा जो जिसके आश्रित हो, उसे उसका अलंकार माना जाना चाहिए। अभंगश्लेष अर्थ पर आश्रित है; अतः अर्थालंकार तथा सभंग को शब्दाश्रित होने से शब्दालंकार मानना चाहिए।

आचार्य मम्मट सभंग एवं अभंग दोनों भेदों को ही शब्दाश्रित मानते है। वस्तुतः अन्वय–ध्यतिरेक–व्यतिरेक–भाव के आधार पर दोनों ही भेद शब्दालंकार सिद्ध होंगे। उदाहरणस्वरूप, सभंग श्लेष में 'पूतना–मारण में सुदक्ष' को लिया जा सकता है। 'पूतनामारण' एक शब्द है। भंग करने पर इसके दो अर्थ होंगे– 'पूतनामा, रण में सुदक्ष रूय्यक के अनुसार 'पूतना–मारण में सुदक्ष' काठ है तथा 'पूतनामा रण में सुदक्ष' जतु या लाख है। दोनों ही अर्थ परस्पर भिन्न न होकर एक हैं, आपस में मिले हुए हैं।

मम्मट के अनुसार यदि 'पूतनामारण में सुदक्ष' का शब्द–परिवर्त्तन कर दिया जाए तो 'पूतना को मारने में चतुर' तथा 'पवित्रनामवाले' दो अर्थ नहीं निकलेंगे। यदि पूत के स्थान पर इसका पर्याय 'पवित्र' शब्द रख दिया जाए तो प्रथम अर्थ नष्ट हो जायगा। या पूतनामारण की जगह 'पूतनाहनन' कर दिया जाय तो द्वितीय अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकेगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि सभंगश्लेष शब्दालंकार है। अभंग श्लेष में भी शब्द परिवर्त्सप संभव नहीं है। जैसे–

रावनसिर सरोजवनचारी।

चलि रघुबीर सिलमुखधारी।[4] यहाँ 'शिलीमुख' शब्द द्वयर्थक है, जिसका अर्थ है बाण एवं भौंरा। यहाँ कवि का कथन है कि रावण के सिररूपी कमल–वन में रामचंद्र के बाणरूपी भौंरे प्रवेश कर गए। यदि 'शिलीमुख' के स्थान पर उसका समानार्थी अन्य शब्द जैसे सर

या मधुप रख दिया जाय तो सर के रखने पर द्वितीय अर्थ एवं मधुप के रखने पर प्रथम अर्थ खंडित हो जायगा। इससे यह निष्कर्ष निकला कि अलंकारों की शब्द एवं अर्थनिष्ठता के लिए अन्वयव्यतिरेक–सिद्धांत ही अधिक उपयुक्त है तथा इस दृष्टि से सभंगपद–श्लेष एवं अभंगपद–श्लेष दोनों ही शब्दालंकार हैं।

अर्थालंकार का उदाहरण

रंचहि सौं ऊंचे चढ़ैंरंचहि सौं घटि जाहिं
तुला कोटि खल दुहुन की यही रीति जग माहिं[5]

इसमें दो अर्थ हैं, जो तुला और खल दोनों में घटित होते हैं। घटि जाहिं दोनों में लगता है। घटि जाहिं के बदले कोई दूसरा शब्द रख दिया जाय तो अर्थ में बाधा नहीं आएगी और श्लेष का चमत्कार, पूर्ववत् बना रहेगा। इसमें शब्द–परिवर्तन के द्वारा भी चमत्कार नष्ट नहीं होता; अतः यहाँ अर्थालंकार हुआ।

श्लेष स्वतंत्र अलंकार है या नहीं ? उद्भट एवं रूय्यक आदि के अनुसार श्लेष अन्यालंकारविवित्त नहीं होता अर्थात् इसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। जहाँ श्लेष होगा, वहाँ निश्चित रूप से कोई अन्य अलंकार भी रहेगा। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि श्लेष अन्य अलंकारों के चमत्कार का बाधक होता है। आचार्य मम्मट इस मत से सहमत नहीं हैं। इनके अनुसार श्लेष की स्वतंत्र सत्ता भी रहती है और यह अन्यालंकारमिश्रित भी दिखाई पड़ता है। वे यह मानते हैं कि शुद्ध श्लेष के बहुत–से उदाहरण प्राप्त होते हैं। अन्य अलंकारों के साथ श्लेष के मिश्रण में अलंकारत्व का निर्णय दोनों की प्रधानता पर निर्भर करता है। जिस संदर्भ में जो अलंकार प्रधान होता है, उसे ही प्रधानता देनी चाहिए न कि सर्वत्र श्लेष ही प्रधान होगा। शुद्ध श्लेष का निर्णय श्लिष्ट विशेष्य के द्वारा होता है।

श्लेष का अन्य अलंकारों के साथ संबंध

श्लेष तथा समासोक्तिः श्लेष में दो अर्थ होते हैं और दोनों ही प्रस्तुत होते हैं; किंतु समासोक्ति में एक अर्थ प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत। समासोक्ति में प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है। अतः, इसमें प्रस्तुत वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य; पर श्लेष में दोनों ही अर्थ प्रस्तुत होते हैं। समासोक्ति में श्लिष्ट विशेषणों का प्रयोग होता है, उसमें विशेष्य श्लिष्ट नहीं होता; पर श्लेष में विशेष्य–विशेषण दोनों ही श्लिष्ट होते हैं।

अर्थश्लेष और अभिधामूला शाब्दी व्यंजनाः श्लेष में दोनों ही अर्थ अभिधेय होते हैं, किंतु अभिधामूलाशब्दी व्यंजना में एक अर्थ वाक्य होता है। और दूसारा व्यग्य।

भारतीय काव्याचार्यो ने काव्य में श्लेष का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए स्थान–स्थान पर इसकी प्रशस्ति की है।[6] दंड़ी ने सभी वकोक्तियों या अलंकारों का शोभाधायक श्लेष को मानते हुए समस्त वाङ्मय को स्वभावोक्ति एवं वकोक्ति के रू५ में विभाजित किया है। इन्होंने बताया कि श्लेषालंकार अन्यान्य अलंकारों का अंग होते हुए भी चमत्कारक होता है। उपमा, रूपक, आक्षेप एवं व्यतिरेक में तो श्लेष की गोचरता सिद्धि करते हुए इन्होंने अन्यान्य अलंकारों के साथ भी इसका संबंध दिखलाया है।

उद्भट[7] ने श्लेष की प्रबलता स्वीकार करते हुए बताया कि अन्य अलंकारों का साथ होने पर इसका प्राधान्य होता है।

रूद्रट[8] ने श्लेष के सुंदर एवं उपयुक्त प्रयोग के लिए महाकवियों को जो निर्देश दिया है, उससे काव्य में इसके महत्त्व का परिज्ञान होता है। इनके अनुसार काव्यानुशासन या व्याकरणशास्त्र का गंभीर अध्ययन, महाकवियों के प्रबंधों का सम्यक् अनुशीलन, देशीय भाषाओं का ज्ञान तथा शब्द–कोशों के अध्ययन के उपरांत ही महाकवि को श्लेष की रचना में प्रवृत होना चाहिए।

पंडितराज[9] ने बताया कि श्लेष वाणी के नूतन सौभाग्य का उद्भावक एवं उपमा की भाँति स्थान–स्थान पर सभी अलंकारों का अनुग्राहक होता है। यह नवीन सौभग्य को उत्पन्न करता हुआ सहृदयों की विविध भावनाओं का विषय बनता है।

स्वरूप विकास

भामह[10] ने सर्वप्रथम श्लेष को अलंकार रूप में मान्यता दी थी; किंतु उनके पूर्व भरत ने इसे गुण–प्रकरण में स्थान देकर इसकी परिगणना गुणों में की थी। समयांतर से भरत–कृत यही 'श्लेषगुण' शब्द–श्लेष एवं अर्थ–श्लेष के रूप में मान्य हुआ।

भरत के अनुसार अभीष्ट अर्थ–समूह के द्वारा परस्पर अनुसंबद्ध पदों की श्लिष्टता ही श्लेष है। इन्होंने श्लेष की दूसरी परिभाषा देते हुए कहा कि जहाँ स्वाभाविक रूप से स्फुटता एवं गहन विचार हो तथा शब्दों में सुप्रति–बद्धता हो तो वहाँ भी श्लेष होगा। भरत ने गुणरूप में वर्णित श्लेष में कवि की ईप्सा एवं स्वाभविक स्फुटता पर अधिक बल दिया है। यहाँ भरत ने 'ईप्सितेनार्थजातेन' के द्वारा श्लेष के दो तत्त्वों पर विचार कियाः

(क) श्लेष में कवि विवक्षित अर्थ को प्रकट करने के लिए मनोनुकूल भावना के अनुसार ही शब्द–विन्यास करता है।
(ख) इसमें ऐसे शब्द व्यवहृत होते हैं, जिसमें एकाधिक अर्थ भरे रहते हैं तथा वे कवि के लिए सार्थक होते है। इसका अभिप्रया यह हुआ कि श्लेष में अनेक अर्थो का नियोजन कवि की इच्छा के अनुसार एवं सार्थक हो।

भामह ने श्लेष के स्वरूप–विश्लेषण में उपमान एवं उपमेय के अभेद को ही उक्त अलंकार का केंद्र–बिंदु माना। इनके अनुसार गुण, किया एवं नाम के कारण उपमेय का उपमान के साथ तादात्म्य या अभेद–स्थान ही श्लेष है। भामह ने श्लेष के लिए श्लिष्ट शब्द का प्रयोग किया है। इनके लक्षण में उपमान के गुण, किया एवं नाम में उपमेय के गुण, किया तथा नाम की 'अभेद–सिद्धि' को ही श्लेष का प्रतिपाद्य माना गया है। यहाँ भामह का अभिप्राय उपमान तथा उपमेय के समान धर्मों में भिन्नार्थता के आधार पर साम्य–स्थापन तथा उपमान और उपमेय का युगपद् प्रयोग करते हुए रूपक के साथ इसका पार्थक्य सूचित करना है। भामह को स्वतः अपने लक्षण पर यह संदेह हो गया था कि उपमेय तथा उमान में एकत्व प्रतिपादन तो रूपक में भी होता है; अतः इस लक्षण की अतिव्याप्ति रूपक में भी हो जाएगी। फलतः, उन्होंने रूपक के साथ अंतर स्थापित करते हुए बताया कि 'श्लेष में उपमान एवं उपमेय का एक साथ (युगपद्) प्रयोग वांछनीय होता है। यहाँ भामह ने बताया कि रूपक में उपमेय और उपमान के धर्मो को भिन्न शदों से प्रकट किया जाता है, जबकि श्लेष में दोनों के अर्थ एक ही शब्द द्वारा कथित होते हैं। श्लेष में शब्दों की अनेकार्थता एक अनिवार्य तत्त्व है; किंतु रूपक में वह वांछनीय नहीं हैं। भामह के श्लेष–विवेचन में रूपक एवं श्लेष का इतना सांकर्य है कि दोनों में अंतर स्थापित करना कठिन हो गया है।

इनकी परिभाषा श्लेषालंकार की उप अस्वथा को व्यक्त करती है, जब वह रूपक से मिला हुआ था तथा उससे पृथक, होने का भी प्रयास कर रहा था। वे उपमादि की पृष्ठभूमि से युक्त रहने के कारण इसे अर्थालंकार स्वीकार करते हैं। भामह के विवेचन में श्लेष की सादृश्यमूलकता तथा रूपक और श्लेष के अंतर का स्पष्टीकारण इनकी दो महान् उपलब्धियाँ है।

दंडी[11] के श्लेष–रूिपण में उपमेयोपमान के संबंध का परित्याग एक महत्वपूर्ण घटना है, जिससे रूपक और श्लेष का सांकर्य मिट गया। इन्होंने सर्वप्रथम श्लेष की वास्तविक परिभाष उपस्थित की। इनके अनुसार एक रूप से स्थित होकर भी वाक्य जब अनेकार्थ का प्रतिपादन करे, तब वहाँ श्लेष होगा। यहाँ दंडी ने श्लेष के दो तत्त्वों का निरूपण किया–(क) श्लेष में एकरूपान्वित वचन का प्रयोग होता है तथा (ख) उससे अनेक अर्थ की प्रतीति होती है।

दंडी ने श्लेष में अनेकार्थता का निदर्शन कर इसके यथार्थ स्वरूप का उल्लेख किया। श्लेष में अनेक अर्थ चिपके रहते हैं, इसकी उद्‌भावना दंडी ने की। भामह अनेकार्थ तत्त्व को स्पष्ट नहीं कर सके थे; अतः दंडी का लक्षण ही नवीन विकास का द्योतक है। इन्होंने यह भी कहा कि अन्य अलंकार का अंग होकर भी श्लेष चमत्कारक होता है। दंड़ी तक आकार श्लेषालंकार के स्वरूप में विकास हुआ और उसमें स्थिरता भी आई। दंडी ने मुख्यतः अश्लिष्ट पदो के द्वारा अनेक अर्थ के कथन में श्लेष मानक अर्थश्लेष का ही निरूपण किया, शब्द–श्लेष का नहीं। इन्होंने यह सिद्ध किया कि यदि एक रूपान्वित शब्दों के द्वारा ही किसी वाक्य में अनेक अर्थ स्फुट हों, तो वहाँ श्लेष होगा। इनका यह लक्षण भामह की उपेक्षा स्पष्ट एवं आधुनिक आचार्यों के लक्षण के निकट है।

उद्‌भट[12] श्लेषालंकार के वैज्ञानिक विवेचन करनेवाले आचार्यों में अग्रगण्य हैं। इन्होंने सर्वप्रथम इसके प्रकार, स्वरू एवं क्षेत्र का निर्धारण करते हुए श्लेष के स्वरूप–विकास में नई दृष्टि दी।

(क) इन्होंने सर्वप्रथम अर्थश्लेष एवं शब्दश्लेष के रूप में इसका विभाजन किया। इनके अनुसार जहाँ एक प्रयत्नोच्चार्य शब्द प्रयुक्त होंगे, वहाँ अर्थश्लेष एवं उन शब्दों की छाया धारण करनेवाले शब्दों के प्रयोग में शब्दश्लेष होगा। श्लेष का ऐसा विभाजन सर्वथा स्वतंत्र एवं वैज्ञानिक है।

(ख) श्लेष एवं अन्य अलंकारों के क्षेत्र का निर्धारण करते हुए भी उद्‌भट ने नया विचार दिया। जहाँ श्लेष के साथ अनेक अलंकार हों, वहाँ श्लेष प्रधान होगा एवं अन्य अलंकार गौण होंगे। श्लेष के हट जाने पर अन्य अलंकारों का सौंदर्य भी नष्ट हो जाता हे।

(ग) इन्होंने शब्दश्लिष्ट तथा अर्थश्लिष्ट दोनों को ही अर्थालंकार में परिणत कर दिया।

(घ) भामह की भाँति इन्होंने भी श्लेष को श्लिष्ट कहा।

(ङ) इनके अनुसार, जब शब्दों के दो रूपों में साम्य हो, किंतु स्वर एवं प्रयत्न में अंतर हो तो शब्दश्लेष होगा। अतः दोनों के स्वरूप की भिन्नता एक प्रयत्नोच्चार्यता पर ही निर्भर है।

वामन[13] के विवेचन में कोई नवीनता नहीं है और इन पर भामह का प्रभाव है। इन्होंने पुनः श्लेष का संबंध उपमानोपमेय के साथ स्थापित किया। रूद्रट प्रथम आलंकारिक हैं, जिन्होंने श्लेष को स्पष्ट रूप से शब्द एवं अर्थ के रूप में पृथक् अलंकार स्वीकार कर इनका वर्णन पृथक्–पृथक् अध्यायों में किया है। दोनों ही अलंकारों का भिन्न–भिन्न लक्षण प्रस्तुत कर रूद्रट ने न केवल नया विचार दिया, अपितु श्लेष के इतिहास में नवीन चेतना का समारंभ किया। इनके अनुसार श्लेषालंकार में श्लिष्ट, अक्लिष्ट एवं विविध पदों की संधि से युक्त अनेक ऐसे वाक्यों की एक साथ रचना हो, जो एकाधिक अर्थ बता सकें। यह लक्षण शब्दश्लेष का है। इस लक्षण में निम्नांकित बातें हैं:

(क) इसमें ऐसे वाक्यों की युगपद् रचना होती है, जो अनेक अर्थों के द्योतक होते हैं अर्थात् श्लेष में अनेक अर्थों की योजना होती है।

(ख) इसके अनेक वाक्यों में शिलष्टता होती है अर्थात् वे सुनियोजित होते हैं तथा उनमें अक्लिष्टता या कष्ट–कल्पना–राहित्य एवं विविध पदों की संविध होती है।

रूद्रट ने शब्दश्लेष के निरूपण में विविध पद–संधि की चर्चा की तथा संधि के द्वारा अनेकार्थ की सिद्धि पर विचार किया।

अर्थश्लेष के लक्षण में बताया गया कि जब अनेकार्थ पदो के द्वारा रचित एक वाक्य अनेक अर्थों को द्योतित करे, तो अर्थश्लेष होगा।

रूद्रट[14] के दोनों लक्षणों में अंतर स्पष्ट है।

शब्दश्लेष में युगपद् अनेक वाक्यों की योजना होती है; किंतु अर्थश्लेष में एक ही वाक्य होता है। शब्दश्लेष में श्लिष्ट, अक्लिष्ट अथवा विविध पदों की संधियों से युक्त वाक्या होते हैं तथा शब्दों की प्रधानता होती है। रूद्रट का 'युगपद् अनेकवाक्यम्' भामह के 'इष्टः प्रयोगो युगपदपमानोपमेययोः' से प्रभावित है। इन्होंने अर्थश्लेष में भी अनेकार्थ पदों की योजना की; किंतु परवर्ती आचार्यों ने एकार्थप्रतिपादक शब्दों के प्रयोग पर बल दिया। इस संबंध में रूद्रट ने दो नवीन तथ्यों पर भी विचार किया है। इनका कहना है कि भाषाश्लेष के अतिरिक्त श्लेष अलंकार सभी अलंकारों के साथ स्पष्ट रूप से संकरित रहता है एवं उपमा तथा समुच्चय के साथ इसका सांकर्य अत्यंत रमणीय होता है। इस कथन के द्वारा रूद्रट दंडी के विचार के पोषक सिद्ध होते हैं कि श्लेष सभी अलंकारों की शोभा को बढ़ाता है। रूद्रट श्लेष के ही अधिक चमत्कार धारण करने का उल्लेख करते हैं। इन्होंने दूसरी बात यह कही कि यद्यपि उपमा एवं संमुच्चय स्पष्ट रूप से अर्थालंकार हैं, किंतु दोनों ही शब्दगत साम्य पर आश्रित हैं। रूद्रट के इसी कथन के आधार पर मम्ट एवं वश्वनाथ ने यह निष्कर्ष निकाला कि उपमा में गुण एवं क्रिया के अतिरिक्त शब्द–साम्य भी होता है।

भोज ने शब्दालंकार एवं उभयलंकार दोनों में ही श्लेष को स्थान दिया है। इनके विवेचन पर वामन एवं दंडी के लक्षणों का प्रभाव है। इन्होंने एक शब्द से अनेक अर्थों के कथन में श्लेष माना है।

मम्मट तक आकर श्लेष के दो रूपस्पष्ट हो गए थे; अतः परवर्ती आचार्यों ने शब्द–श्लेष तथा अर्थ–श्लेष के रूप में इसका वर्णन किया। स्वयं मम्मट ने भी शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष का पृथक्–पृथक् विवेचन किया है। इनका अक्षण अत्यंत वैज्ञानिक एवं पूर्ण है। इनके अनुसार अर्थ–भेद होने पर भिन्न होकर भी शब्द जब एक साथ उच्चारण के कारण परस्पर मिलकर एक रूप हो जाएँ तो वहाँ श्लेष–अलंकार होता है। इसका भाव हुआ कि एक बार प्रयुक्त किए गए शब्द से एक ही अर्थ का बोध होता– 'सकत् प्रयुक्तः शब्दः सकृदेव अर्थम् गमयति'। अतः, इस सिद्धांत के अनुसार एक शब्द से दों अर्थ का ज्ञान सभव नहीं; किंतु जब दो अर्थों का बोध कराना होगा तो पृथक्–पृथक् शब्दों का प्रयोग अनिवार्य होगा तथा अनेकार्थवाची शब्दों के अनेक आकार मानने होंगे। इस लक्षण की विशेषताएँ हैः

(क) अर्थ–भेद होने पर समानाकार शब्दों का एक साथ उच्चारण होने के कारण अपने भिन्न रूप का त्यागकर एक साथ मिल जाना ही श्लेष है।

(ख) इसमें (श्लेष में) भिन्नार्थ शब्द प्रयुक्त होते हैं।

(ग) मम्मट समानाकार एवं भिन्नार्थक शब्दों के परस्पर मिलकर एक हो जाने में श्लेष मानते हैं। उन्होंने श्लेष के विवेचन में कतिपय नवीन तथ्यों का समावेश कर इसके स्वरूप–विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। वे हैः

1. मम्मट[15] ने शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष की पृथक्–पृथक् परिभाषाएँ दी। शब्दश्लेष में भिन्नार्थक शब्दों की योजना होती है तो अर्थश्लेष में एकार्थ–प्रति–पादक शब्दों से अनेक अर्थों का अभिधान या कथन होता है।
2. शब्दश्लेष में शब्द परिवृत्तिसहत्व लागू नहीं होता अर्थात् शब्द–श्लेषालंकार में शब्द का प्राधान्य होता हैं। जिस शब्द से चमत्कार उत्पन्न हो, यदि उसके बदले अन्य शब्द रख दिया जाय तो वहाँ उसका चमत्कार नष्ट हो जाता है। अतः, शब्दालंकार में शब्दपरिवृत्तिसहत्व संभव नहीं, शब्दपरिवर्त्तन असह्य होता है। ठीक इसके विपरीत अर्थश्लेष का चमत्कार अर्थाश्रित होने के कारण उसमें शब्द परिवृत्तिसहत्व होता है। अर्थात् किसी शब्द–विशेष को परिवर्त्तित कर उसके बदले में उसका र्प्यायवाची शब्द रख दिया जाय तब भी चमत्कार नष्ट नहीं होता। शब्द–परिवर्त्तन के बाद भी यदि श्लेष के चमत्कार की हानि न हो तो वह अर्थनिष्ठ माना जाएगा।
3. मम्मट[16] ने अन्वय–व्यतिरेक को ही शब्द एवं अर्थ–श्लेष का निर्णायक तत्त्व स्वीकार किया है। अन्वय–व्यतिरेक ही श्लेष की

शब्दनिष्ठता एवं अर्थ–निष्ठता का निकष है–'तत्सत्वे तत्सत्ता अन्वयः एवं तद्भावेतदभावो व्यतिरेकः।' किसी (शब्द) के रहने पर किसी (अलंकार) की सत्ता रहे तो अन्वय एवं किसी के अभाव में उसकीर सत्ता न रहे तो व्यतिरेक होगा।

4. मम्मट ने अन्वय एवं व्यतिरेक के आधार पर सभंग और अभंग दोनों को ही शब्दश्लेष में परिगणित किया।
5. इनके अनुसार श्लेष के साथ अन्य अलंकारों के रहने पर श्लेष का प्राधान्य न होकर उसका आभास–मात्र ही होगा। श्लेष अन्य अलंकारों की भाँति स्वतंत्र रूप से भी रहता है। यह आवश्यक नहीं कि यह अन्यालंकार मिश्रित ही रहे।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी संस्कृत कोश आप्टे पृष्ट 1040।
2. काव्य प्रकाश 9/84।
3. अलङ्कार सर्वस्व पृष्ठ 124।
4. रामचरित मानस पृष्ठ 377।
5. संक्षिप्त अलङ्कारमञ्जरी पृष्ठ 159।
6. काव्यादर्श 2/363, 3/313।
7. काव्यालङ्कारसार सङ्ग्रह 4/10।
8. काव्यालङ्कार 4/35।
9. रसगंगाधर पृष्ठ 537।
10. नाट्यशास्त्र 16/98, 99।
11. काव्यादर्श 2/310।
12. काव्यालङ्कारसारसंग्रह 4/9, 10।
13. धर्मेषु तन्त्रप्रयोगे श्लेषः 4/3/37।
14. काव्यालङ्कार 4/1।
15. काव्यप्रकाश 9/98।
16. काव्यप्रकाश पृष्ठ 424।